**ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA**
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 **PP. No.- 61-64**

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e-I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-19, No.-I, Issues-35, YEAR-Jan-Mar. 2025

# जनजातीय आंदोलन के कारण एवं परिणाम

**प्रीति कुमारी**

1. शोध अध्येत्री–समाजशास्त्र विभाग, पाटलिपुत्रा विश्वविद्यालय, पटना (बिहार) भारत

**Received-04.01.2025, Revised-11.01.2025, Accepted-17.01.2025** **E-mail:iamprityssinha@gmail.com**

***सारांशः आदिवासियों का पूरा जीवन उनकी संस्कृति, समाज विशिष्ट क्रियाविधियों की वजह से निरंतर दिलचस्पी और अध्ययन का विषय बना हुआ है। वे सभ्य दुनिया की चकाचौंध से दूर अब भी पहाड़ों और जंगलों को अपना निवास बनाए हुए हैं। प्रकृति से यह रिश्ता उनकी समूची दिनचर्या और सभी रस्मों, रीति–रिवाजों में प्रखरता से व्यक्त होता है। आदिवासियों का रहन–सहन, नृत्य–संगीत, सामाजिक व्यवस्था, अर्थ–तंत्र, उनकी संस्कृति सब विलक्षण और आकर्षित करने वाला है।***

***कुंजीभूत शब्द– जनजातीय आंदोलन, संस्कृति, चकाचौंध, रीति–रिवाजों, प्रखरता, रहन–सहन, नृत्य–संगीत, सामाजिक व्यवस्था***

अंग्रजों ने इन्हें 'ट्राइबल' (tribal) शब्द से पुकारा है। इन्हें आदिवासी 'आदिम समाज' और अनादिवासी भी कहते हैं। अंग्रेजों ने सर्वप्रथम 1931 की जनगणना में इन्हें 'आदिवासी' (जनजाति) नाम दिया, जिसे भारत सरकार ने भी बाद में अपना लिया। यद्यपि महात्मा गांधी ने जनजातियों को हिंदुओं से अलग दिखाने की बात को गलत बताया। समय–समय पर इनके बारे में अनेक भ्रामक धारणांए भी फैलाई गई। इन्हें जंगली, असभ्य, गंवार, अज्ञानी, वृक्षों, पत्थरों तथा सर्पों की पूजा करने वाला आदि शब्दों से संबोधित किया गया है।[1]

भारत में आदिवासियों या जनजातियों की संख्या इंग्लैंड की जनसंख्या के लगभग बराबर ही है। (Manpower profile, India, 1998:34)। जनजातीय जनसंख्या देश की कुल आबाद की 8.08 प्रतिशत है। जनजातीय जनसंख्या अफ्रीका के बाद भारत में द्वितीय स्थान पर है। भारत में जनजातियां पूरे देश में फैली हुई हैं। सबसे अधिक आदिवासी जनसंख्या मध्य प्रदेश में और उसके बाद महाराष्ट्र, उड़ीसा, बिहार और गुजरात में है। देश की कुल जनसंख्या के तीन से पांचवें भां से कुछ अधिक (62.75%) आदिवासी पांच राज्यों में पाए जाते हैं। मिजोरम में राज्य की कुल जनसंख्या के प्रतिशत जनजाति के लोग हैं, नागालैंड में 89 प्रतिशत, मेघालय और अरुणाचल प्रदेश में प्रत्येक में 80 प्रतिशत, त्रिपुरा में 70 प्रतिशत, मध्य प्रदेश और उड़ीसा में प्रत्येक में 23 प्रतिशत, राजस्थान में 12 प्रतिशत और असम और बिहार में 10 प्रतिशत। इस प्रकार 4राज्यों में जनजातीय जनसंख्या राज्यों की कुल जनसंख्या का प्रतिशत है।

संख्या में सर्वधिक गोंड (मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और आंध्र प्रदेश) और भील (राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश) हैं। सबसे कम संख्या वाली जनजाति अंडमानी केवल 19 हैं। जनजातियों का अधिकतर हिस्सा स्वयं को हिंदू मानता है। धर्म से 89 प्रतिशत हिंदू, 5.5 प्रतिशत ईसाई, 0.3 प्रतिशत बौद्ध, 0.2 प्रतिशत मुसलमान और 5 प्रतिशत अन्य हैं।

भौगोलिक वितरण की दृष्टि से एल. पी. विद्यार्थी ने जनजातीय लोगों को चार क्षेत्रों में बांटा है :

1. **हिमालयी क्षेत्र** – जिसमें जम्मू–कश्मीर, हिमाचल प्रदेश (भोंट, गुजर, गादी), उत्तर प्रदेश का तराई क्षेत्र (थारू), असम (मिजो, गारो, खासी), मेघालय, नागालैंड (नागा), मणिपुर (माओ) और त्रिपुरा (त्रिपुरी) शामिल हैं और देश की कुल जनजाति की संख्या का 11 प्रतिशत हैं।

2. **मध्य भारत क्षेत्र**– जिसमें पश्चिम बंगाल, बिहार (संथाल, मुंडा, ओरांव और हो), उड़ीसा (खोंड, गोंड) शामिल हैं और देश की कुल जनजाति संख्या का 57 प्रतिशत हैं।

3. **पश्चिम भारत क्षेत्र**– जिसमें राजस्थान (भील, मीणा, गरासिया), गुजरात (भील, दुबला, घोदिया) और महाराष्ट्र (भील, कोली, महादेव, कोकना) शामिल हैं, और भारत की कुल जनजातीय संख्या का 25 प्रतिशत हैं।

4. **दक्षिण भारत क्षेत्र**– जिसमें आंध्र प्रदेश (गोंड, कोया, कोंडा, दोवा), कर्नाटक (मैकदा, मराती), तमिलनाडु (इरूला, टोड़ा), केरल (पुलयन, पनलयन) और अंडमान और निकोबाद द्वीप समूह (अंडमानी निकोबारी) षामिल हैं और देश की जनजातीय जनसंख्या का लगभग 7 प्रतिशत हैं।

विभिन्न राज्यों में रहने वाले जनजातीय लोग विभिन्न प्रजातीय समूहों से संबंद्ध हैं, जैसे प्रोटोआस्ट्रोलाइड जिसमें संथाल, मुंडा ओरांव और भूमिज शामिल हैं। मंगोलियन जिसमें गोरा, नीग्रिटो आदि शामिल हैं। भाषाई आधार पर इन्हें तीन समूहों में विभाजित किया जा सकता है, ये हैंः आस्ट्रिक जिसमें संथाल, मुंडा, भूमिज शामिल हैं, द्रविड़ जिसमें ओरांव, टोडा, चैंचू शामिल हैं, और तिब्बती–चीनी जिसमें गोरा, भूटिया आदि शामिल हैं। जनजाति के लोग समग्र रूप से प्राविधिक व शैक्षिक रूप से पिछड़े हुए हैं। यद्यपि अधिकतर जनजातियां सामाजिक संगठन की पितृवंशीय व्यवस्था का अनुसरण करती हैं, फिर भी कुछ ऐसी भी हैं जिनमें मातृवंशीय व्यवस्था चलती है (जैसे गारो आदि)। नागाओं, मिजों, संथालों, मुंडा, ओरांओ के अच्छे अनुपात ने ईसाई धर्म अपना लिया है। कुछ लोगों को बौद्ध पश्चिम से भी चिह्नित किया गया है, जैसे भोटिया, लप्चा आदि।[2]

स्वतंत्रता के पश्चात् इन जनजातियों को सूचीबद्ध किया गया, तब 1950 में इनके समूहों की संख्या 212 थी तथा आज इनके समूहों की संख्या बढ़कर 461 हो गई है। हमारे देश में आदिवासी या जनजाति पद की कोई पृथक् अवधारणा विकसित नहीं हुई और इसी कारण संविधान के अनुच्छेद 342 में जनजातियों को परिभाषित किया है। अनुच्छेद 342 के अंतर्गत लिखा है कि 'राष्ट्रपति सार्वजनिक अधिघोषणा द्वारा जनजातियों या जनजातीय समुदायों या उनके अंगों व समूहों को अनुसूचित जनजातियों घोषित कर सकता है।' अब प्रश्न उठता है : संविधान ने जनजातियों को परिभाषित करने के लिए कौन–सी कसौटियों या आधारों को अपनाया है? इसके लिए 1952 में प्रकाशित अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग ने कुछ कसौटियों को प्रस्तुत किया है। कसौटियों में सम्मिलित किए गए हैंः (i) पृथक्करण (ii) प्रजातीय लक्षण (iii) भाषा और बोली (iv) खाने की आदत : मांसाहारी भोजन (v) पोषाक : नग्न एवं अर्द्धनग्न (vi) घुमक्कड़ एवं मद्यपान तथा नृत्य।[3]

जनजाति आयोग ने जिन कसौटियों को रखा है, वे आज वास्तविक धरातल पर सही नहीं उतरतीं। ए. आर. देसाई (1961) का कहना है कि यदि इन कसौटियों को लागू किया जाए तो इनके अंतर्गत केवल 20 प्रतिशत आदिवासी जनसंख्या को ही सम्मिलित

**अनुरूपी लेखक/ संयुक्त लेखक**

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e-I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-19, No.-I, Issues-35, YEAR-Jan-Mar. 2025

किया जा सकता है। जनजातियों की परिभाषा की बहस बहुत लंबी चौड़ी है। विकास और प्रशासन की दृष्टि से संविधान द्वारा प्रदत्त परिभाषा ही आज व्यावहारिक समझी जाती है। कम–से–कम परिभाषा में कहीं कोई अराजकता तो नहीं है।

ये जनजातियां भारत के दूसरे समाजों की अपेक्षा आर्थिक रूप से बहुत कम विकसित हैं। इसका कारण उनके आदिवासी होने के साथ–साथ उनका अत्यधिक शोषण भी है जिससे वे स्वतंत्रता से पहले एवं स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी पीड़ित रहे। वास्तव में आदिम समाज का इतिहास शोषण का इतिहास रहा है। ब्रिटिश शासन काल में आदिम लोगों का एवं इनके क्षेत्रों का लगभग पूर्ण रूप से ध्यान नहीं रखा गया जिसके कारण जनजाति समाज एवं अन्य लोगों की सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक स्थिति में एक बड़ी खाई उत्पन्न हो गई।

प्रशासन के परोक्ष एवं अपरोक्ष रूप से सहयोग के द्वारा महाजन, जमींदार एवं व्यापारी वर्ग ने इनके क्षेत्रों में अत्यधिक शोषण किया और इनकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति को बिगाड़ दिया। ऐसी स्थिति ने तनाव एवं झगड़े उत्पन्न किए। इसी के परिणामस्वरूप आदिम लोगों ने इसके विरुद्ध आंदोलन की शुरूआत की। आदिम क्षेत्रों में समय–समय पर अमानवीय व्यवहार के खिलाफ कड़ा विरोध किया गया और इनके (आदिम लोगों के) द्वारा यह भी प्रयास किया गया कि अपने मूल अधिकारों एवं अपनी संपत्तियों को पुनः प्राप्त करें। वास्तव में, जनजाति समाज के संघर्ष के पीछे प्रमुख कारक रहे–जनजातीय शिकायतों से निपटने में नौकरशाहों और प्रशासकों की सहानुभूति में कमी, वन कानूनों व नियमों की जटिलता, गैर–जनजातीय लोगों के हाथों में जनजातीय लोगों की भूमि जाने से रोकने के कानूनों की कमी, जनजातीय लोगों के पुनर्वास के प्रभावहीन सरकारी प्रयास, जनजातीय समस्याओं को सुलझाने में राजनैतिक अभिजात वर्ग में रुचि व गति की कमी, उच्च स्तरीय समितियों की सिफारिशें लागू करने में विलंब, सुधारात्मक उपायों को लागू करने में भेदभाव।

**जनजातीय आंदोलन के प्रकारों को कैमेरान ने चार समूहों में बांटा है :**

1. प्रतिक्रियावादी, जो अतीत के अच्छे दिनों की वापसी चाहते हैं। लिंटन इन्हें पुननरुत्थानी आंदोलन कहता है।
2. रूढ़िवादी, जो समकालीन परिवर्तनों में बाधा डालने और यथास्थिति बनाए रखने के लिए आयोजित किए जाते हैं। लिंटन इन्हें स्थिरतावादी आंदोलन मानता है।
3. संशोधनकारी, जो वद्यामान रिवाजों में विशेष परिवर्तन एवं संस्कृति या सामाजिक व्यवस्था में सुधार या शुद्धीकरण चाहते हैं। ये कुछ संस्थाओं को कम करना भी चाहते हैं, यद्यपि यह आंदोलन मौजूदा समूची संरचना को बदलना चाहते हैं। ये आंदालन ''सामाजिक गतिशीलता'' आंदोलन भी कहे जाते हैं। ये आंदोलन अधिकतर निम्न जातियों में होते हैं, लेकिन जनजातियों में नहीं।
4. क्रांतिकारी, जो मौजूदा सामाजिक व्यवस्था या संस्कृति को किसी प्रगतिवादी व्यवस्था से समूल प्रतिस्थापित करना चाहते हैं। इस आंदोलन को पुनरुद्धार का नाम भी दिया गया है।[4]

जनजातीय आंदोलन को चार प्रकार के अन्य आधारों पर भी बांटा जा सकता है। राजनैतिक स्वायत्तता तथा राज्यों का निर्माण चाहने वाले आंदोलन (नागा, मिजो, झारखंड), कृषि आंदोलन, वन आधारित आंदोलन और सामाजिक–धार्मिक या सामाजिक–सांस्कृतिक आंदोलन (भगत आंदोलन, राजस्थान व मध्य प्रदेश में भीलों का, दक्षिण गुजरात में जनजातियों में या संथालों में रघुनाथ मुरमू का आंदोलन)।[5]

**सुरजीत सिन्हा ने जनजातीय संघर्ष या आंदोलनों को पांच भागों में विभाजित किया है[6] –**

1. अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान ब्रिटिश शासन काल में नृजातीय विद्रोही आंदोलन, जैसे मुंडा लोगों का बिरसा आंदोलन, 1832 में कोल विद्रोह, 1857–58 में संथाल विद्रोह और 1880 के दशक में नागा विद्रोह।
2. उच्च हिंदू जातियों से प्रतिस्पर्धा करते हुए सुधारात्मक आंदोलन, ओरांवों में भगत आंदोलन, भूमिजों का वैष्णव आंदोलन, संथालों में खेरवार आंदोलन।
3. स्वातंत्रयोत्तर काल में भारतीय संघ के भीतर ही जनजातीय राज्यों के लिए राजनैतिक आंदोलन जैसे छोटा नागपुर तथा उड़ीसा में झारखंड आंदोलन तथा असम व मध्य प्रदेश में पहाड़ी राज्य आंदोलन आदि।
4. पृथक्कतावादी आंदोलन, जैसे नागा व मिजी आंदोलन।
5. कृषि अशांति से संबंधित आंदोलन, जैसे नक्सलवादी आंदोलन (1967) और बिरसादल आंदोलन (1968–69)।

यदि हम भारतीय स्वतंत्रता के पश्चात् उन सभी आंदोलनों पर विचार करें जिनमें नागा आंदालन (जो 1946 में शूरू होकर 1972 तक चला जब नई सरकार सत्ता में आई और नागा विद्रोह पर नियंत्रण प्राप्त कर लिया गया), मिजो आंदोलन (गुरिल्ला युद्ध जो अप्रैल 1970 में मेघालय राज्य के गठन के बाद समाप्त हुआ और 1966 में असम और मिजोरम से उत्पन्न हुआ था), गोंड राज्य आंदोलन (जो 1941 में अलग राज्य के लिए मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र के गोंड लोगों द्वारा चलाया गया और जो 1962–63 में अपनी चरम सीमा पर पहुंचा) नक्सलवादी आंदोलन (जो बिहार, पश्चिमी बंगाल, आंध्र प्रदेश और असम में चला), कृषि आंदोलन (मध्य प्रदेश में गोंड और भीलों द्वारा चलाया गया) और वनों पर आधारित (परंपरागत वन अधिकारों के लिए गोंड लोगों द्वारा चलाया आंदोलन) आदि सम्मिलित हैं, तो यह कहा जा सकता है कि जनजातीय अशांति के फलस्वरूप आंदोलन ऐसे आंदोलन थे जो अत्याचारों और भेदभाव, उपेक्षा व पिछड़ेपन और ऐसी सरकार के विरुद्ध थे जो जनजातीय गरीबी, भूख, बेरोजागारी और शोषण के प्रति उदासीन थी और जो सरकार से मुक्ति के लिए छेड़े गए थे।

भारतीय स्वतंत्रता से पूर्व हुए जनजातीय आंदोलनों में अंग्रेजों द्वारा किए गए अतिक्रमण का कड़ा विरोध किया गया और कई बार इसके कारण हिंसात्मक कार्यवाहियां भी की गई। इन आंदोलनों का जन्म आदिवासियों को नियंत्रण करने की दोहरी चाल के कारण हुआ। अंग्रेजों ने साहूकारों, ठेकेदारों, जमींदारों और आबकारी, राजस्व, वन तथा पुलिस विभाग के अधिकारियों को इन्हें शोषित करने के लिए प्रोत्साहित किया तथा इस तरह आदिवासियों को शोषण द्वारा न केवल कमजोर बनाया बल्कि आदिवासियों का आक्रोश उनके अपने ही देशवासियों पर उतरवाने के लिए दोहरी नीति अपनाई। इस शोषण का परिणाम इन्हें ऋणग्रस्तता तथा अपनी उपजाऊ भूमि को गैर–आदिवासियों को हस्तांतरण करने के रूप में भुगतान पड़ा। वनों पर जनजातियों का अधिकार काफी हद तक कम हो गया था तथा सरकारी अधिकारीगणों ने इनके अधिकारों की रक्षा करने के बजाय इनकी दुर्दशा का लाभ उठाया। अंततोगत्वा इस नीति ने जनजातिय लोगों के आर्थिक आधार को तहस–नहस कर दिया और उन्हें कमजोर बना दिया। इससे न केवल उनके मन में

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e-I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-19, No.-I, Issues-35, YEAR-Jan-Mar. 2025

अपने ही देशवासियों के प्रति कड़वाहट भर गई बल्कि समाज की मुख्यधारा से भी उन्हें अलग कर दिया गया। अंततः इसके परिणामस्वरूप आंदोलन और सशस्त्र विद्रोह हुए। कुछ जनजातीय आंदोलन निम्न हैं :

**कोल विद्रोह, 1831**[7] : अंग्रेजों को छोटा नागपुर के सिंहभूम क्षेत्र में प्रवेश करने के प्रयास में "हो" लोगों के कड़े प्रतिराध का सामना करना पड़ा। सिंहभूम के गवर्नर जनरल के एजेंट टी. विल्किंसन की सूचना के अनुसार, 'सिंहभूम न तो कभी भारत में मुस्लिम शासकों के अधीन रहा और न ही मराठाओं ने यहां से 'चौथा' वसूल करने के उद्देश्य से इस पर कब्जा किया।' सन् 1821 में कर्नल रिचर्ड्स के नेतृत्व में ब्रिटिश सेना ने सिंहभूम में प्रवेश किया। इनमें 'हो' जनजाति के लोग दूर–दूर तक बसे हुए थे, जिन्हें लरका कोल भी कहा जाता था। इसलिए, स्थानीय लोगों ने इस क्षेत्र का नाम कोल्हान दिया। अंग्रेजों ने "हो" लोगों के साथ विशेष शर्तों के अधीन संधि करनी चाही जिसके अनुसार वे सीधे ब्रिटिश नियम के तहत् आएंगे परंतु दुर्भाग्यवश उन्हें धोखा दिया गया। उन्हें जमींदारों को कर अदा करने के लिए बाध्य किया गया, तथा इन जमींदारों ने इनके साथ दुर्व्यवहार किया। जमींदारों के अत्याचार तथा साहूकारों के शोषण के विरुद्ध ब्रिटिश सरकार इन्हें सुरक्षा प्रदान नहीं कर सकी।

जमींदारों, साहूकारों और ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा किए गए शोषण के प्रति छोटा नागपुर के मुंडा लोग पहले ही काफी उत्तजित थे। 1831 में बेदखल हो जनजातीय और मुंड लोगों ने इसके विरुद्ध खुले रूप से विद्रोह कर दिया। इस विद्रोह के भड़कने का मूल कारण आदिवासी लोगों की जमीनों का बाहरी व्यक्तियों को हस्तांतरण और जमींदारों, महाजनों व अन्य लोगों के द्वारा उनका शोषण था। यह विद्रोह शीघ्र ही रांची और हजारीबाग, पलामू जिले के दस परगना और मानभूम और निकटवर्ती क्षेत्रों में फैल गया। हालांकि, अंततः विद्रोहियों को सशस्त्र सेना की सहायता से कुचल दिया गया। यह विद्रोह "कोल विद्रोह" के नाम से जाना जाता है।

**संथाल विद्रोह, 1855**[8] : पूर्वी भारत में संथालों का विद्रोह भी बहुत महत्त्वपूर्ण था। संथाल, बंगाल की सीमा के निकट बिहार में निवास करते थे। यह एक आदिवासी जाति थी, राजमहल और मयूरभंज में ये बहुलता से रहते थे। संथालों के क्षेत्र में भारत के विभिन्न भागों से आकर जमींदारों और साहूकारों ने रहना शुरू कर दिया था। संथालों पर पुलिस, जमींदारों, कर अधिकारियों और साहूकारों ने जुल्म ढाने शुरू कर दिए थे। संथालों की स्त्रियों के साथ दुर्व्यवहार किया जाता था। संथालों का विश्वास था कि सरकार हमारी रक्षा करेगी, परंतु सरकार ने ऐसा कुछ नहीं किया। तब संथालों ने स्वयं को अंग्रेजी प्रभुत्व से स्वतंत्र कराने की घोषणा की। संथालों ने यह विद्रोह 1855–56 में सिंधु और कान्हू नामक दो वीर भाइयों के नेतृत्व में किया। यह आंदोलन प्रारंभ में सफल हुआ। इनके क्षेत्र से अंग्रेज और बाहरी व्यक्ति निकाल दिए गए। परंतु बाद में ब्रिटिश प्रभुत्व 1856 के अंत के समय में इनका विद्रोह समाप्त करने में सफल हुआ। अंग्रेज विद्रोह के दमन के बाद भी संथालों पर अत्याचार करते रहे थे। कुछ वर्षों बाद वातावरण सामान्य होता चला गया था। 1917 में संथालों में पुनः रोष बढ़ा। 1917 में ही मयूरभंज में संथालों को जबर्दस्ती मजदूरों का कार्य करने के लिए विवश किया गया था, तब पुनः इन्होंने एक प्रबल विद्रोह खड़ा कर दिया था। यह विद्रोह भी ब्रिटिश प्रभुत्व के खिलाफ किया गया था।

**बिरसा आंदोलन, 1895**[9] : इस आंदोलन कानाम इनके प्रणेता आदिवासी मुखिया बिरसा मुंडा पर पड़ हैं बिरसा आंदोलन हिंदू जमींदारो व साहूकारों द्वारा आदिवासियों का शोषण और मिशनरियों द्वार आदिवासियों को ईसाई धर्म में परिवर्तन के विरुद्ध निर्देशित था। आदिवासियों ने ईसाई धर्म में परिवर्तन इस विश्वास पर किया कि ईसाई बन जाने पर मिशनरियों द्वारा जमींदारों और साहूकारों से उनकी रक्षा की जाएगी। आदिवासियों को ईसाईयत के प्रलोभन से मुक्त कराने के लिए बिरसा मुंडा ने एक नए धर्म का शुभारंभ किया जो कि हिंदुवाद और ईसाई धर्म का सम्मिश्रण था। इस धर्म का कोई निश्चित नाम नहीं था। यह बिरसा के विचारों पर आधारित एक जन आंदोलन था जो बाद में बिरसा आंदोलन के नाम से प्रचलित हुआ। अपने इस नए धर्म के जरिए उन्होंने मुंडा और उरांव जनजातियों पर असाधारण प्रभाव छोड़ा। 1895 में मुंडाओं ने उनके नेतृत्व में विद्रोह किया था। अन्य जनजातियों ने भी उनका साथ दिया तथा एकजुट होकर शोषण व अत्याचारों का विरोध किया। ब्रिटिश सरकार को इस विद्रोह को दबाने के लिए सैन्य बल प्रयोग करना पड़ा था। बिरसा को धोखे से पकड़कर जेल में डाल दिया गया। जेल में बिरसा मुंड की संदेहास्पद मृत्यु के पश्चात् यह आंदोलन कुछ शांत हो गया।

बिहार के छोटा नागपुर क्षेत्र में बिरसा विद्रोह एवं ऐसे अन्य आंदोलनों के पश्चात् आदिवासियों के भूमि संबंधी रिकॉर्ड को पूरा करने तथा उनके भूमि अधिकारों की सुरक्षा करने के कदम उठाए गए। आदिवासी भू–स्वामियों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए "छोटा नागपुर काश्तकारी अधिनियम, 1908" बनाया गया। इसके द्वारा आदिवासी भूमि का गैर–आदिवासियों को हस्तांतरण निषेध कर दिया गया।

**मिजो विद्रोह, 1890**[10] : मिजोरम के निवासी मिजो आदिवासी कहलाते हैं। इनका एक सुसंगठित समाज एवं संस्कृति है। मिजो ब्रिटिशकालीन भारतीय भू–भाग पर हमला बोल देते थे। इन आक्रमणों से मुक्ति हेतु ब्रिटिश सरकार ने सैनिक कार्यवाही द्वारा 1890 में लुशाई क्षेत्र पर ब्रिटिश शासन स्थापित किया। ईसाई मिशनरियों ने मिजो लोगों को ईसाई धर्म अपनाने पर अनेक प्रलोभन दिए। इससे प्रभावित होकर जापानियों द्वारा असम पर आक्रमण के समय मिजो लोगों ने ब्रिटिश सरकार का सहायोग किया। इनके स्वतंत्र जीवन में राजनीतिक हस्तक्षेप के व्यवधान से मिजो आंदोलन हुआ। चीन तथा तत्कालीन पूर्वी पाकिस्तान के सहयोग से इस आंदोलन को और अधिक बल मिला। इस सहयोग की आड़ में आतंकवादी सरलता से शरण ले लेते थे। भारत सरकार के सराहनीय प्रयासों से देशभक्त मिजो इनके चंगुल से मुक्त हुए। उन्हें घने वनों से हटाकर सड़कों के किनारे नियोजित ढंग से बसाया गया। वर्तमान में मिजोरम मिजो की इच्छाओं के अनुकूल स्वतंत्र प्रांत है।

**नागा विद्रोह**[11] : नागा, नागालैंड के निवासी हैं। ये गरीब हैं तथा पर्वतीय प्रदेश में रह रहे हैं। यहां झूम कृषि जीवनयापन का एकमात्र साधन है। नागालैंड के विद्रोही नागाओं के छोटे से वर्ग का व्यवहार का कारण है। सदियों से असुरक्षा, अशांति के वातावरण में रहने के कारण इनका जीवन के प्रति दृष्टिकोण कुछ विचित्र सा हो गया है। अंग्रेजों के संरक्षण में ईसाई मिशनरियों ने शिक्षा एवं सुविधाओं का प्रसार किया तथा धर्म परिवर्तन का कार्य किया। स्वाभिमान, आजादी तथा स्वछंदता नागाओं की प्रमुख विशेषताएं रहीं। ये किसी की गुलामी में अपमान का अनुभव करते हैं युद्ध किए बिना हार मान लेना इनके स्वभाव के विरूद्ध है। अपनी स्वतंत्रता की रक्षा हेतु नागाओं ने मुगलों, आहोम तथा ब्रिटिश शासकों से संघर्ष किया। स्वतंत्रता के पशचात भी नागालैंड में अशांति है। कुछ विद्रोही नागा राष्ट्र विरोधी गतिविधियों में संलग्न हैं।

**झारखंड आंदोलन, 1920** : झारखंड आंदोलन आदिवासियों द्वारा चलाया गया दीर्घकालिक अहिंसात्मक आंदोलन था और इसे क्षेत्र के गैर–आदिवासी निवासियों का भी समर्थन प्राप्त था। इसकी मुख्य मांग बिहार, उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल और मध्य प्रदेश नामक चार राज्यों के 16 जिलों को मिलाकर एक पृथक झारखंड राज्य बनाना था। झारखंड राज्य बनाने का उद्देश्य ऐसे उन सभी क्षेत्रों को

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e-I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-19, No.-I, Issues-35, YEAR-Jan-Mar. 2025

एकीकृत करना है, जो कभी मिलकर छोटा नागपुर प्रशासित डिवीजन के तहत आने वाले बंगाल, उड़ीसा, बिहार व मध्य प्रदेश राज्यों के आदिवासी क्षेत्र थे। पृथक झारखंड राज्य की मांग के मुख्य कारणों में बढ़ता हुआ क्षेत्रीय राजनैतिक असंतुलन, आदिवासियों का शोषण तथा उनका वंचन के बोध हैं। इसकी शुरूआत वर्तमान शताब्दी के आरंभ में शिक्षित युवा आदिवासी, सामाजिक कार्यकर्त्ताओं और विद्यार्थियों के एक समूह द्वारा की गई थी।1920 के दशक में इसने एक संगठित आदिवासी आंदोलन के रूप में गति पकड़ ली।[12]

आंदोलन की एतिहासिक पृष्ठभूमि पर नजर डालें तो पता चलता है कि इस आंदोलन का जन्म 1920 के दशक में "छोटा नागपुर उन्नत समाज" के गठन के साथ हुआ। इस संगठन का उद्देश्य आदिवासियों की समस्याओं की तरफ सरकार का ध्यान आकृष्ट करना था। 1937 में प्रथम चुनाव के बाद आदिवासी महासभा के गठन के साथ इसका राजनैतिक आधार विस्तृत हुआ। 1938–1947 के बीच कई हिंसात्मक घटनाएं हुई। बाद में महासभा का अंत हो गया। 1949 में एक नई क्षेत्रीय झारखंड पार्टी का जन्म हुआ। इसकी सदस्यता छोटा नागपुर के सभी रहवासियों के लिए खुली थी। इस प्रकार पार्टी की विचारधारा में जातिवाद से क्षेत्रवाद की ओर आमूल परिवर्तन हुआ, जो कि इन दिनों में प्रचलित वृहत राजनैतिक एवं धर्मनिरपेक्षता की विचारधारा के अनुकूल था। पार्टी द्वारा अपने उद्देश प्राप्ति का माध्यम संवैधानिक था। अंततः 1998 के अंत में तथा 1999 के प्रारंभ में पृथक झारखंड राज्य बनाने का प्रस्ताव रखा। (जिसका नाम वनांचल दिया गया जिसमें 6 जिले तथा दो संभाग, बिहार के छोटा नागपुर और संथाल शामिल थे।) अगस्त 2000 में सदन में बिल पास कर नवंबर, 2000 में बिहार के 55 जिलों में से 18 जिलों का झारखंड राज्य बनाया गया जोकि इस आंदोलन की विजय थी।[13]

उपरोक्त आदिवासी आंदोलन के अतिरिक्त और भी विद्रोह हुए जो इस प्रकार हैं: 1778 का छोटा नागपुर के पहाड़िया सरदार का ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध विद्रोह, 1809–28 एवं 1846 का गुजरात में भील विद्रोह, 1829 का असम के खासियों का विद्रोह, 1832–33 का बिहार के भागीरथ के नेतृत्व में खेडवार विद्रोह, 1835 का नेफा (असम) में डफलाओं द्वारा ब्रिटिश क्षेत्र की जनता पर हमला और ब्रिटिश द्वारा बदले की कार्यवाही, 1911 में बस्तर आदिवासियों द्वारा बगावत, 1920–22 का अंग्रेजों के विरूद्ध कोयाओं का रम्पा विद्रोह, 1932 का नगागैर–ईसाई विद्रोह (असम), 1942 का उड़ीसा में कोरापट विद्रोह 1942–45 का अंडमान द्वीप समूह की जनजातियों के द्वारा जापानियों के कब्जे वाले क्षेत्र में सेना के विरूद्ध, 1956–58 वर्ली विद्रोह (महाराष्ट्र) इत्यादि। जनजातीय लोगों की प्रमुख समस्याएं रहीं, गरीबी, ऋणग्रस्तता, अशिक्षा, बंधुता, शोषण, बीमारी, बेरोजागारी इत्यादि। ऐसे में कानून आदिवासियों की सहायता न करे, सरकार कठोर हो जाए और पुलिस उन्हें बचाने में असमर्थ हो और परेशान रके, तो वे शाषकों के विरूद्ध हथियार या संघर्ष का रास्ता तो अपनाएंगे ही और यही इन जनजातियों ने किया भी। इन संघर्षों के माध्यम से जनजातियां अपनी बहुत–सी महत्त्वपूर्ण मांगों को मनवाने में सफल भी रही हैं।

## संदर्भ ग्रंथ सूची

1. www. Planing commission. Nic. in/sectors/sj/Jiteracy %20 of % Scs-Sts. doc.
2. Departent of personel, Government of India, Report – 1993, Social welfare Committee for Scs/Sts Report – 1999 – 2000.
3. मित्तल सतीश चंद्र, भारत का सामाजिक–आर्थिक इतिहास (1758–1947), हरियाणा साहित्य अकादमी: पंचकुला, 2005, पृ.33.
4. आहुजा, राम, भारतीय समाज, रावत पब्लिशंस : जयपुर, 200, पृ. 31–32.
5. शम्भूलाल दोषी, प्रकाश चन्द्र जैन, भारतीय समाज संरचना और परिवर्तन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस: जयपुर, 2002, पृ. 151–152.
6. आहुजा, राम, वही, पृ. 272.
7. आहुजा, राम, वही, पृ. 273.
8. आहुजा, राम, वही, पृ. 273.
9. वर्मा, रूपचंद्र, भारतीय जनजातियां अतीत के झरोखे से, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 1997, पृ. 31–32.
10. जैन, के. सी., आधुनिक भारत का इतिहास, यूनिवर्सिटी पब्लिशंस : दिल्ली, 2008, पृ. 2–3.
11. वर्मा, रूपचंद्र, वही, पृ. 40–41.
12. तिवारी, विजय कुमार, भारत की जनजातियां, हिमालय पब्लिशिंग हाऊस : मुंबई, 1998, पृ. 258.
13. तिवारी, विजय कुमार, वही, पृ. 258.

*****